पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में
2004 का दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद सं. 2806
में
2019 का लेटर्स पेटेंट अपील सं. 1024

- =====
1. उप महाप्रबंधक बैंक ऑफ इंडिया, पटना, अंचल चाणक्या प्लेस बीरचन्द्र पटेल पथ,
पटना-800001।
 2. अंचल प्रबंधक, बैंक ऑफ इंडिया, भागलपुर अंचल, आदमपुर चौक, भागलपुर।

.....अपीलकर्ता/ओं

बनाम्

1. सावित्री देवी, पत्नी-स्व. दिनेश्वर प्रसाद, निवास- ग्राम- कुमारडीह, थाना- मकदुमपुर,
जिला- जहानाबाद।
2. पंकज कुमार, पुत्र- स्व. दिनेश्वर प्रसाद, निवास- ग्राम- कुमारडीह, थाना- मकदुमपुर,
जिला- जहानाबाद।

.....प्रत्यर्थी/यों

=====

उपस्थित:

अपीलार्थी/यों की ओर से : श्री अजय कुमार सिन्हा सिनियर, अधिवक्ता
श्री अजीत कुमार सिन्हा, अधिवक्ता
श्री दिलकस खान, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी/यों की ओर से : श्री संजय पारसमणि, अधिवक्ता

=====

सेवा कानून-दंड-मूल रिट-याचिकाकर्ता ने निकासी पर्ची के आधार पर राशि की निकासी के संबंध में अपनी गलती स्वीकार की-मूल रिट-याचिकाकर्ता ने यह भी स्वीकार किया कि उसने निकासी की तारीख में बदलाव किया; और सबूत को नष्ट करने के लिए उसने उस पूरक पुस्तक के पृष्ठ को भी फाड़ दिया जिस पर प्रविष्टियाँ की गई थीं-मूल रिट-याचिकाकर्ता ने पहले की

स्वीकार्यता से पलटा कि उसने कोई अपराध नहीं किया बल्कि उसकी गलती स्वीकार करने वाली स्वीकार्यता दबाव, बल और धमकी के तहत ली गई है—जाँच अधिकारी की रिपोर्ट और दंड का आदेश रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर है और जाँच निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार की गई है और जाँच में कोई कमी नहीं है—आक्षेपित आदेश को रद्द किया गया—एलपीए स्वीकृत।

(पैरा 7, 8, 11)

(2021) 11 एससीसी 321—निर्भर किया गया।

=====

पटना उच्च न्यायालय का निर्णय आदेश

=====

कोरम: माननीय न्यायमूर्ति श्री पी.बी. भजंत्री

और माननीय न्यायमूर्ति श्री आलोक कुमार पाण्डे

सीएवी निर्णय

(पर:- माननीय न्यायमूर्ति श्री आलोक कुमार पाण्डे)

दिनांक : 03-07-2024

वर्तमान अपील सी.डब्ल्यू.जे.सी. संख्या 2806/2004 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 14.08.2018 के निर्णय के विरुद्ध है, जिसके तहत विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 15.11.2001 की जांच अधिकारी की रिपोर्ट, दिनांक 20.12.2001 के दण्ड आदेश तथा दिनांक 18.04.2002 के अपीलीय आदेश को रद्द कर दिया था।

2. वर्तमान एलपीए के संक्षेप में बताए गए तथ्य यह हैं कि मूल रिट-याचिकाकर्ता/स्वर्गीय दिनेश्वर प्रसाद ने 05.03.2001 को श्री केशव प्रसाद सुमन के खाते से निकासी पर्ची के आधार पर 15,000/- रुपये की राशि निकाली। यह भी आरोप

लगाया गया है कि उन्होंने निकासी की तारीख 15.02.2001 से बदलकर 05.03.2001 कर दी। यह भी आरोप लगाया गया है कि सबूतों को नष्ट करने के लिए मूल रिट-याचिकाकर्ता ने पूरक पुस्तक के पृष्ठ संख्या 143 को फाड़ दिया, जिस पर 15.02.2001/16.02.2001 की प्रविष्टियों के साथ छेड़छाड़ की गई थी।

3. मूल रिट-याचिकाकर्ता के विरुद्ध विभागीय जांच की गई तथा जांच अधिकारी ने 15.11.2001 को जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की। मूल रिट-याचिकाकर्ता को अपना बचाव करने का अवसर भी दिया गया। जांच अधिकारी ने पाया कि मूल रिट-याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप सिद्ध हो गए हैं। तत्पश्चात, उसे दूसरा कारण बताओ नोटिस दिया गया, तत्पश्चात 20.12.2001 को मूल रिट-याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त करने का दंड आदेश पारित किया गया, जिसकी अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पुष्टि की गई।

4. रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान मूल रिट-याचिकाकर्ता की मृत्यु हो गई और उसके स्थान पर उसकी पत्नी और बेटे को प्रतिस्थापित किया गया है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका को स्वीकार कर लिया और जांच अधिकारी के निष्कर्ष को बाहरी तथ्यों पर आधारित होने के कारण रद्द कर दिया। परिणामस्वरूप, अनुशासनात्मक प्राधिकारी के आदेश और अपीलीय प्राधिकारी के आदेश को भी रद्द कर दिया गया है। विद्वान एकल न्यायाधीश के उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर अपीलकर्ताओं ने वर्तमान एलपीए को फाइल किया है।

5. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि विभागीय जांच में निष्कर्ष को उचित संदेह से परे नहीं बल्कि संभाव्यता की प्रबलता पर साबित किया जाना आवश्यक है और जांच अधिकारी का निष्कर्ष प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के अनुसार है, जिससे मूल रिट-याचिकाकर्ता को अपना बचाव करने का पूरा अवसर

मिलता है और विभागीय कार्यवाही के संचालन में कोई प्रक्रियात्मक अनियमितता नहीं है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि मूल रिट-याचिकाकर्ता पर लगाया गया जुर्माना उसके खिलाफ साबित आरोपों से अधिक नहीं है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि मूल रिट-याचिकाकर्ता ने 15,000 रुपये की निकासी के संबंध में अपना अपराध स्वीकार किया है। उन्होंने यह भी कबूल किया कि उन्होंने निकासी पर्ची पर ओवर-राइटिंग की थी। विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि बैंक का क्लर्क होने के नाते उन्हें संबंधित दस्तावेजों पर सीधा नियंत्रण रखना होता है और वे प्रबलता के सिद्धांत पर चूक के लिए उत्तरदायी हैं।

6. प्रतिवादियों के विद्वान वकील ने दलील दी कि विद्वान एकल न्यायाधीश का विवादित निर्णय न्यायोचित और कानूनी है क्योंकि जांच अधिकारी का निष्कर्ष बाहरी सामग्री पर आधारित है। विद्वान वकील ने आगे दलील दी कि मूल रिट याचिकाकर्ता के संस्वीकृति का कानून की नज़र में कोई महत्व नहीं है क्योंकि यह स्वेच्छा से नहीं दिया गया है बल्कि यह दबाव के आधार पर दिया गया है।

7. बैंक का व्यवसाय विश्वास पर आधारित है और मूल रिट-याचिकाकर्ता बैंक का कर्मचारी है, जिसे जनता के विश्वास का कर्तव्य निभाने की जिम्मेदारी उठानी है। यदि दस्तावेज में कोई छेड़छाड़ की गई है तो उसे मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार अपने वरिष्ठ अधिकारी को सूचित करना चाहिए था।

8. अभिलेख के अवलोकन से यह पाया गया कि मूल रिट-याचिकाकर्ता ने 11.04.2001 को श्री केशव प्रसाद सुमन के खाते से निकासी पर्ची के आधार पर 05.03.2001 को 15,000/- रुपये निकालने के संबंध में अपना अपराध स्वीकार किया। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि उन्होंने निकासी की तिथि 15.02.2001 से बदलकर 05.03.2001 कर दी और साक्ष्य नष्ट करने के लिए उन्होंने पूरक पुस्तक के पृष्ठ संख्या

143 को भी फाड़ दिया जिस पर 15.02.2001/16.02.2001 की प्रविष्टियों के साथ छेड़छाड़ की गई थी। यदि यह माना जाता है कि उनका संस्वीकृति दबाव के कारण लिया गया था, तो उन्होंने इस हद तक कि उनका संस्वीकृति दबाव के तहत लिया गया था, संस्वीकृति दर्ज करने के तुरंत बाद उच्च अधिकारी को अपनी शिकायत दर्ज करानी चाहिए थी। 06.11.2001 को मूल रिट-याचिकाकर्ता ने पहले की गई स्वीकारोक्ति से पलटते हुए कहा कि उसने कोई अपराध नहीं किया है, बल्कि अपराध स्वीकार करने वाला उसका स्वीकारोक्ति दबाव, दबाव और धमकी के तहत लिया गया है। उक्त आधार पर, मूल रिट-याचिकाकर्ता के कृत्य से केवल यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बाद में किया गया आचरण कुछ और नहीं बल्कि बाद में किया गया विचार है।

9. **भारत संघ एवं अन्य बनाम दलबीर सिंह** (2021) 11 एससीसी 321 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के न्यायिक निर्णय को उद्धृत करना आवश्यक है, जहां माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 21 में निम्नानुसार माना है:-

21. इस न्यायालय ने यूनियन ऑफ इंडिया

बनाम पी. गुनासेकरन मामले में न्यायिक समीक्षा के अधिकार क्षेत्र के प्रयोग के लिए व्यापक मानदंड निर्धारित किए थे। न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया:

"12. सुस्थापित स्थिति के बावजूद, यह देखना बहुत ही परेशान करने वाला है कि उच्च न्यायालय ने अनुशासनात्मक कार्यवाही में अपीलीय प्राधिकारी के रूप में काम किया है, यहां तक कि जांच अधिकारी के समक्ष साक्ष्य की भी फिर से जांच की है। आरोप पर निष्कर्ष अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा स्वीकार किया गया था और केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण द्वारा भी इसका समर्थन किया गया था। अनुशासनात्मक कार्यवाही में, उच्च न्यायालय प्रथम अपील की दूसरी अदालत के रूप में कार्य नहीं कर सकता है। उच्च न्यायालय, भारत के संविधान के

अनुच्छेद 226/227 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, साक्ष्य की फिर से जांच करने का जोखिम नहीं उठाएगा। उच्च न्यायालय केवल यह देख सकता है कि:-

(क) जांच किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा की जाती है;

(ख) जांच उस संबंध में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार की जाती है;

(ग) कार्यवाही के संचालन में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया गया है;

(घ) मामले के साक्ष्य और गुण-दोष से इतर कुछ कारणों से प्राधिकारियों ने स्वयं को निष्पक्ष निष्कर्ष पर पहुंचने में असमर्थ बना लिया है;

(ङ) प्राधिकारियों ने स्वयं को अप्रासंगिक या बाहरी विचारों से प्रभावित होने दिया है;

(च) निष्कर्ष, प्रथमदृष्टया, इतना पूर्णतः मनमाना और स्वेच्छाचारी है कि कोई भी विवेकशील व्यक्ति ऐसे निष्कर्ष पर कभी नहीं पहुंच सकता;

(छ) अनुशासनात्मक प्राधिकारी स्वीकार्य और भौतिक साक्ष्य को स्वीकार करने में गलती से विफल रहा हो;

(ज) अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने गलत तरीके से अस्वीकार्य साक्ष्य को स्वीकार कर लिया था जिससे निष्कर्ष प्रभावित हुआ;

(झ) तथ्य का निष्कर्ष किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है।

उक्त निर्णय में यह तय किया गया है कि घरेलू जांच में भारतीय साक्ष्य अधिनियम के तहत साक्ष्य के सख्त और कृत्रिम

नियम लागू नहीं हो सकते। सभी तथ्य जो विवेकपूर्ण मस्तिष्क के लिए तार्किक रूप से प्रमाणिक और स्वीकार्य हैं। सुनी-सुनाई बातों से कोई तीव्र प्रतिक्रिया नहीं है, बशर्ते कि उनमें उचित संबंध और विश्वसनीयता हो। यह सच है कि विभागीय अधिकारियों और प्रशासनिक न्यायाधिकरणों को ऐसी तथ्यों का मूल्यांकन करने में सावधानी बरतनी चाहिए और ऐसी बातों को आसानी से नहीं निगलना चाहिए जो भारतीय साक्ष्य अधिनियम के तहत सख्ती से अप्रासंगिक हों। इस प्रस्ताव के लिए निर्णयों या पाठ्यपुस्तकों का हवाला देना आवश्यक नहीं है, हालाँकि हमें दोनों पक्षों के वकीलों द्वारा केस लॉ और अन्य अधिकारियों के माध्यम से न्यायिक निर्णयों का अवलोकन किया है। न्यायिक दृष्टिकोण का सार निष्पक्षता, बाहरी सामग्रियों या विचारों का बहिष्कार और प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन करना है। बेशक, निष्पक्षता ही आधार है और अगर विकृति या मनमानी, पक्षपात या निर्णय की स्वतंत्रता का समर्पण निष्कर्षों को प्रभावित करता है, तो ऐसा निष्कर्ष, भले ही घरेलू न्यायाधिकरण का हो, सही नहीं माना जा सकता है।

10. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के न्यायिक निर्णयों पर विचार-विमर्श के आलोक में, हमें इस संभावना पर गौर करना होगा कि दोषी कर्मचारी के विरुद्ध दोष सिद्ध होता है या नहीं।

11. ऊपर की गई चर्चाओं के आलोक में, यह स्पष्ट है कि जांच अधिकारी की रिपोर्ट और साथ ही सजा का आदेश रिकॉर्ड पर उपलब्ध तथ्यों पर आधारित है और जांच निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार की गई है और जांच में कोई कमी नहीं है। इसलिए, अपीलकर्ताओं ने 2004 के सीडब्ल्यूजेसी नंबर 2806 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा

पारित दिनांक 14.08.2018 के आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए एक मामला बनाया गया है।

12. तदनुसार, सीडब्ल्यूजेसी संख्या 2806/2004 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 14.08.2018 के आदेश को रद्द किया जाता है और वर्तमान एलपीए को अनुमति दी जाती है।

(श्री पी.बी. भजंत्री, न्यायमूर्ति)

(श्री आलोक कुमार पाण्डे, न्यायमूर्ति)

शहजाद/-

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।